International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

महात्मा गांधी के सामाजिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

तिलकराज
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
Email : tilakrajpolitical@gmail.com

शोध–आलेख सार : *महात्मा गांधी जी का राजनीतिक व आर्थिक विचारों के साथ–साथ सामाजिक सुधार के क्षेत्र में भी उनके विचारों और कार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने अपने राजनीतिक आन्दोलनों के साथ–साथ समाज सुधार के लिए भी आन्दोलन चलाए। उन्होंने जातिवाद, साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद आदि बुराईयों के खिलाफ कडा संघर्ष किया। दक्षिण अफ्रीका में भी गांधी जी ने श्वेत लोगों की रंगभेद की नीति का कडा विरोध किया तथा फिर भारत में आकर भी उन्होंने एक समाज सुधारक के रूप में यहाँ पर प्रचलित अन्याय, अत्याचार व उत्पीडन का घोर विरोध करते हुए उसके खिलाफ कडा संघर्ष किया। दक्षिण अफ्रीका से लौटकर भारत में आने पर गांधी जी ने दलितों की मुक्ति के लिए जो कठिन प्रयास किए उससे यह स्पष्ट होता है कि उनका सामाजिक न्याय के साथ गहरा लगाव रहा था।*

मुख्य–शब्द : जातिवाद, साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद, रंगभेद की नीति, अन्याय, अत्याचार, सामाजिक न्याय।

भूमिका : उन्होंने लोगों को यह उपदेश दिया कि वे दिखावा व विलासिता का जीवन छोडकर सरल जीवन को अपनाएं। उन्होंने उस समय की परिस्थितियों को ध्यान मे रखकर ही ग्रामोद्धार का बीडा उठाया था। उस समय भारतीय ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों को देखकर गांधी जी का हृदय द्रवित हो उठता था। उन्होंने देखा कि असली भारत गांव में बसता है। इसलिए उन्होंने 'गांव की ओर लौटो' का नारा दिया क्योंकि उनका मानना था कि ग्रामीण जीवन की अर्थव्यवस्था के मजबूत होने पर ही, तथा गांव का सांझा विकास होने पर ही भारत असल रूप में एक लोकतंत्र स्थापित कर सकता है। इस प्रकार गांधी जी ने कुछ सामाजिक विचार प्रस्तुत किये जो कि निम्नलिखित है।[1]

शोध–प्रविधिः इस शोध–पत्र के लिए शोध सामग्री अधिकांश रूप में द्वितीयक स्रोतों से ग्रहण की गई हैं। इसमें ऐतिहासिक विश्लेषण व वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ–साथ शोधकर्त्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं व समाचार पत्रों से प्राप्त की गई हैं।

गांधी जी के वर्णव्यवस्था पर विचार

गांधी जी लोगों के आम काम–काज के बटवारें के आधार पर वर्णव्यवस्था को स्वीकार करते थे। उन्होंने मनु के चतुर्वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) को वैज्ञानिक आधार पर भी स्वीकार किया। परन्तु वे मनु की तरह इन वर्णों को आपस में एक–दूसरे से बडा या छोटा, उच्च या निम्न नहीं मानते थे, बल्कि सबको समान मानते थे। गांधी जी किसी भी वर्ण के व्यक्ति द्वारा उसके जन्मजात व पांरपरिक कार्य करने को उचित, तथा आसान मानते थे। परन्तु वे इस बात को भी नहीं मानते थे कि किसी व्यक्ति को अपने पुश्तैनी व्यवसाय को छोडकर दूसरा करने का अधिकार नहीं है और उस व्यक्ति को वो ही व्यवसाय करना चाहिए भले ही वह कार्य उसकी इच्छा के प्रतिकूल हो। बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा के मुताबिक कार्य करके अपनी जीविका कमाने का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

गांधी जी का मानना था कि मनु द्वारा प्रतिपादिक वर्ण व्यवस्था का समय बीतने के साथ–साथ ह्रास होता गया व उसका स्थान वर्तमान जाति व्यवस्था ने ले लिया। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही जाति से आबद्ध हो गया तथा जाति के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति में छोटे–बडे की भावना उजागर हो गई। लेकिन गांधी जी जाति व्यवस्था के इस स्वरूप को स्वीकार नहीं करते थे तथा वे जाति के आधार पर किसी को भी बडा या छोटा नहीं मानते थे। वे इस व्यवस्था का अंत करने तथा हरिजनों का

[1] डॉ० विश्वनाथ प्रसाद सिंह 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक–1995, पृ0 सं0 256.

कल्याण करने के लिए अपनी सार्वजनिक जीवन के अंतिम तीन दशक तक प्रयास करते रहे। उन्होंने इसके लिए अन्तर्जातीय विवाह तथा भोज को भी प्रोत्साहन दिया।[2]

गांधी जी के वर्ण व्यवस्था सिद्धान्त का सार निम्नलिखित तीन बातों में निहित है।

1. वे वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हुए कहते है कि इससे वंशानुगत तथा परम्परागत संस्कारों का लाभ मिलता है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने वंश के हिसाब से कुछ स्वाभाविक योग्यताएं रखता है और बचपन से ऐसे वातावरण में पलते हुए वह शीघ्र ही ऐसे कार्यों में दक्षता हासिल कर लेता है।
2. उनका दूसरा तर्क है कि इससे समाज में अकारण होड या प्रतियोगिता की समाप्ति होती है क्योंकि आज के दिन प्रत्येक व्यक्ति उसी रोजगार के तरफ उन्मुख होता है जिससे उसको ज्यादा मुनाफा हो। इसके लिए चाहे भले ही वह आवश्यक योग्यता न रखता हो। जैसे कि सभी लोग आर्थिक लाभ की वजह से वकील, डॉक्टर आदि बनना चाहते हैं।
3. इसी प्रकार गांधी वर्णव्यवस्था का समर्थन करते हुए तीसरा तर्क देते है कि समाज के प्रत्येक वर्ण को उसके पारिश्रमिक में समानता होनी चाहिए। अर्थात् एक वकील या डॉक्टर को एक नाई या एक सफाई कर्मचारी के बराबर वेतन मिलना चाहिए। जिससे कि इनके बीच में होने वाली होड समाप्त हो जाएगी।

इस प्रकार गांधी जी ने वर्ण व्यवस्था के पक्ष में उपरोक्त तर्क प्रस्तुत किए है हालांकि उनके इन तर्कों की आलोचना भी की गई क्योंकि इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने ही पेशे में सिमटकर रह जाएगा और इससे समाज में निम्न समझे जाने वाली जातियों को उन्नति का अवसर नहीं मिल पाएगा।[3] इस प्रकार गांधी जी वर्ण व्यवस्था की व्याख्या करते हुए कहा कि ''वर्ण व्यवस्था हमें सिखाती है कि हम सब अपने बाप–दादा के पेशे को अपनाते हुए अपनी आजीविका चलाए। यह हमारे अधिकारों का नहीं बल्कि हमारे कर्त्तव्यों का निर्धारण करती है। इसमें उन्हीं धंधो का जिक्र है जो मानव जाति के कल्याण के जरूरी है। इसमे यह अभिप्रायः निहित है कि कोई भी धंधा ऊँचा या नीचा नहीं है और सभी धंधे अच्छे व विधि सम्मत हैं तथा बिल्कुल बराबरी के दर्जे के हैं।[4]

गांधी जी के अस्पृश्यता के बारे में विचार

महात्मा गांधी सवर्ण वर्ग के सामाजिक व राजनीतिक सुधारकों में ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अस्पृश्यता को हिन्दु धर्म के लिए न केवल एक कलंक माना बल्कि इस ऊँच–नीच की दीवार को तोडने का भी प्रयास किया। वे अस्पृश्यता को 'एक सौ सिर वाला दैत्य', मानते थे। वे दलितों की ऐसी दयनीय हालातों के लिए सवर्ण हिन्दुओं को दोषी मानते थे। इसलिए वे कहते थे कि ''मैं अस्पृश्यों का समर्थन इसलिए करता हूँ क्योंकि हमनें उनके साथ घोर अन्याय किया है''।

उनका मानना था कि अस्पृश्यता की बुराई का जन्म हिन्दू धर्म में क्रमिक विकास की उस अवस्था मे हुआ जब गौ–रक्षा करना हिन्दू धर्म का एक अंग बन गया तथा गाय को गौ माता कहा जाने लगा। उसी समय कुछ ऐसे लोग भी हुआ करते थे जो ज्यादा सभ्य नहीं थे और वे गौ–मांस खाते थे। इसी वजह से उन्हे समाज मे तिरस्कृत कर दिया गया और फिर यह अस्पृश्यता पिता से पुत्र को पीढी दर पीढी चलती गई। हालांकि वास्तविकता यह है कि अस्पृश्यता पर गांधी जी का यह कोई शोध कार्य

---

[2] डॉ० रामरत्न, डॉ० रूचि त्यागी 'भारतीय राजनीतिक चिन्तन' मयूर पेपर बैक्स, नोएडा–2003, पृ0 सं0 297–298.

[3] डॉ० बी० एल० फाडिया 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन' साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ0 सं0 209.

[4] मधु लिमये 'अम्बेडकर और गांधी दस्तावेज' न्यायचक्र अंक–9, 15 मई से 14 जुलाई 1995, पृ0 सं0 26

नहीं था। क्योंकि उन्होंने स्वंय स्वीकारा है कि अस्पृश्यता की उत्पत्ति कब हुई, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने भी इसके बारे में अनुमान ही लगाया था।[5]

जब गोपाल कृष्ण गोखले ने महात्मा गांधी जी को बताया कि हमारे यहां दलितों का जितना बुरा हाल हिन्दू समाज ने कर रखा है उतना ही दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का गोरों ने कर रखा है। उनको दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार का प्रत्यक्ष रूप से अनुभव भी प्राप्त था। वहां पर रंगभेद की वैसी ही राजकीय मान्यता मिली हुई थी जैसे कि हमारे यहां अस्पृश्यता को सामाजिक व धार्मिक मान्यता मिली हुई है।

इस प्रकार अस्पृश्यता के बारे में गांधी जी का दृष्टिकोण इसको जडमूल से मिटाने वाला था। वे न तो स्वंय छूत व अछूतों में भेद–भाव करते थे बल्कि उनके आश्रम में रहने वालों को कुछ अन्य व्रतों के साथ–साथ एक स्पर्श भावना का व्रत भी लेना पडता था। गांधी जी ने 1916 में इस व्रत का महत्व समझाते हुए आश्रमवासियों को कहा था कि ''आज हिन्दू धर्म पर अमिट कलंक लगा हुआ है। मैं इस बात को नहीं मानता कि यह अनादि काल से चला आ रहा है। मेरी समझ से अस्पृश्यता का यह शर्मनाक, जघन्य, और हम पर हावी भूत हमारे जातीय इतिहास के उस काल में सवार हुआ था जब हम कालक्रम की गति मे पतन की हद तक पहुंच गए थे। तब से अब तक यह हम पर सवार है।[6]''

इस प्रकार गांधी जी ने अस्पृश्यता के निवारण हेतू सवर्ण हिन्दुओं का आह्वान किया। उन्होंने सवर्ण हिन्दूओं का आह्वान करते हुए कहा कि ऐसा करके हम तथा हमारे पूर्वजों ने इन अस्पृश्यों के साथ जो घोर अन्याय किया उसका देर–सवेर कुछ तो प्रायश्चित कर ही सकते है। गांधी जी स्वंय अस्पृश्यों की वेदना समझने के लिए तथा इसकी अनुभूति हेतू स्वंय इस जाति में पैदा होने की इच्छा रखते हुए कहते थे कि ''यदि मेरा पुर्नजन्म हो तो मुझे अछूत के घर में पैदा होना चाहिए। जिससे मैं उनकी उन परेशानियों व दुखों का भागीदार हो सकूं। जो उन पर जबरदस्ती थोपे गये है''। उन्होंने कहा कि ''यदि हम भारत की आजादी के पांचवे हिस्से को स्थायी गुलामी की हालात में रखना चाहते है तो स्वराज्य एक अर्थहीन शब्द मात्र होगा''।

गांधी जी ने हरिजनों के मंदिर प्रवेश के रोक के कारण ही कहा कि जिस भी मंदिर में हरिजनों का प्रवेश वर्जित होगा। उस मंदिर में वे स्वंय भी नहीं जाएगे। गांधी जी अस्पृश्यता को मिटाने के लिए सर्वप्रथम इस बात पर जोर देते थे कि इस निम्न समुदायों के सांस्कृतिक विकास के लिए ज्यादा से ज्यादा प्रयत्न किया जाना चाहिए।

अस्पृश्यों के प्रति हमदर्दी रखते हुए गांधी जी हरिजन शब्द की रचना की और इनकी समस्या के समाधान हेतू 'हरिजन सेवक समाज' की स्थापना भी की। वे इस समुदाय के हिन्दू समाज में रहते हुए ही इनकी कठिनाईयों को दूर करना चाहते थे। अतः 1932 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेमजे मैक्डोनल्ड ने जब इस समुदाय के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र का ऐलान किया तो गांधी जी ने इसका घोर विरोध किया था। उन्होंने के इस समुदाय के आर्थिक जीवन को सुधारने हेतू घूम–घूम कर लगभग 8 लाख रूपयें हरिजन कोष में एकत्रित भी किए।[7]

गांधी जी के धर्म के बारे में विचार

महात्मा गांधी जी एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वे एक सनातन धर्म वैष्णवी हिन्दू थे। जिन्होंने परम्परागत रूप से अपने पारिवारिक धर्म का पूरी निष्ठा से पालन किया था। वे किसी व्यक्ति को धर्म में बांधना नहीं चाहते थे, अपितु उनका मानना था कि कोई भी व्यक्ति अपने पारिवारिक या

---

5 मनोज सिन्हा 'गांधी अध्ययन' ओरियन्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली–2010, पृ0 सं0 134
6 गणेश मंत्री 'गांधी और अम्बेडकर' प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली–2011, पृ0 सं0 96,99
7 महेश प्रसाद सिंह 'गांधी के सपनों का भारत' ज्ञान गंगा प्रकाशन नई दिल्ली–2010, पृ0 सं0 100,102

अपनी पसंद के अनुसार अपने धर्म का पालन कर सकता है। वह उस धर्म के अर्थ को समझे तथा उसका अध्ययन करते हुए उसका प्रचार–प्रसार भी कर सकता है तथा इसके साथ गांधी जी यह भी सलाह देते है कि व्यक्ति जो कद्र अपने धर्म की, अपने धर्म ग्रन्थों व पूजा–स्थलों की करता है वैसी ही कद्र उसको किसी दूसरे धर्म, उसके धर्म ग्रन्थों व पूजा स्थलों की करनी चाहिए।

गांधी जी सभी धर्मों का एक ही सार मानते थे। उनका मानना था कि किसी व्यक्ति का धर्म उसको वो ही कार्य करने को उत्साहित करता है जो कार्य उसकी अन्तरात्मा भी पुकारती है अर्थात् जिस कार्य को करने से व्यक्ति की आत्मा सहमत नहीं होती उस कार्य को करने के लिए व्यक्ति का धर्म भी प्रेरित नहीं करता। इस प्रकार गांधी जी ने व्यक्ति के धर्म की केवल उन्हीं बातों को मानने के लिए कहा है जो कि उसके लिए प्रासंगिक हो और उसकी आत्मा भी उस कार्य को करने को सहमत हो।[8]

गांधी जी धर्म के संकीर्ण अर्थ को स्वीकार नहीं करते थे। उनका मानना था कि धर्म एक शाश्वत और सार्वभौमिक नैतिक नियमों का सार–संग्रह है। वे उसको अपनी आदर्श समाज की आधारशिला मानते हैं। उनका कहना था कि मैं ऐसे किसी धर्म को नहीं मानता जो नैतिकता से परे हो या जो नैतिकता के परे का कोई उपदेश देता हो। इस प्रकार गांधी जी धर्म को एक शाश्वत व सार्वभौमिक नियम बताते है।[9]

गांधी जी ने जहां एक तरफ हिन्दू धर्म ग्रन्थों, वेद–पुराण, गीता आदि का अध्ययन किया वही दूसरी तरफ उन्होंनें कुरान तथा पैगम्बर साहिब की जीवनी को भी पढा था। इसके साथ–साथ उन्होंनें बाईबल, जैन धर्म, बौद्ध धर्म तथा पारसी धर्म ग्रन्थों का अध्ययन भी किया था। इन सब के पढने पर उन्होंनें एक सार तत्व के रूप यह पाया कि सभी धर्मों में एक बुनियादी एकता है। उनके मतानुसार धर्म हमें कर्त्तव्य का बोध कराता है। वे धर्म का संबंध किसी जाति या वर्ग से नहीं करते। उनका धर्म तो राम राज्य की स्थापना करता है जिसका आश्य है धर्म, प्रेम तथा न्याय का राज्य अर्थात् अहिंसक स्वराज्य।

गांधी जी धर्म को राजनीति में भी जरूरी मानते थे। वे धर्म विहीन राजनीति का कोई अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। वे धर्म तथा नीति से रहित राजनीति को सदा त्याज्य मानते थे तथा राजनीति को धर्म की अनुगामिनी मानते थे और बिना धर्म के राजनीति को एक मुर्दा के समान मानते थे।[10]

गांधी जी के स्त्री सुधार पर विचार

गांधी जी समाज में महिलाओं को भी पुरूषों के बराबर का दर्जा दिये जाने की बात कहते थे। वे इस सामान्य सामाजिक धारणा का खण्डन करते थे कि महिलाएं पुरूषों की तुलना मे कमजोर होती है बल्कि वे बुद्धि और बल दोनों में महिलाओं को पुरूषों के बराबर मानते थे। उनका कहना था कि ''पुरूष को महिला जन्म देती है। वह उसी के मांस व हड्डियों से अपनी मांस व हड्डियाँ प्राप्त करता है। इसीलिए तुम अपने पैरों पर खडे होकर आगे बढो और अपना संदेश विश्व को दो।'' उन्होंनें महिलाओं को संबोधित करते हुए यंग इंडिया में भी लिखा था कि ''भारत का जो भविष्य है वह तुम्हारे पैरों पर लौट रहा है क्योंकि आने वाली भावी पीढी का विकास आप ही करेगी।''[11]

गांधी जी ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए, उनकी गरिमा बनाए रखने के लिए व उनके सामाजिक स्तर सुधारने की कोशिश में कई रचनात्मक सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए। वे इस बात को

---

[8] डॉ० रामरत्न, डॉ० रूचि त्यागी 'भारतीय राजनीतिक चिन्तन' मयूर पेपर बैक्स, नोएडा–2003, पृ0 सं0 295.

[9] डॉ० मधु मुकुल चतुर्वेदी 'प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक' राज पब्लिकेशन हाऊस, जयपुर–2004, पृ0 सं0 227.

[10] मनोज सिन्हा 'गांधी अध्ययन' ओरियन्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली–2010, पृ0 सं0 113–114.

[11] रश्मि पाठक 'भारतीय राजनीतिक विचारक' अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली–2004, पृ0 सं0 119

मानते थे कि जिस प्रकार वैदिक काल में महिलाओं को पुरूषों के बराबर के अधिकार प्राप्त थे उसी प्रकार के बराबर अधिकार उनको आज भी मिलने चाहिए। उन्होंनें मनुस्मृति के इस नियम का भी खण्डन किया जिसमें महिलाओं को पुरूषों के अधीन माना गया था। वे मानते थे कि भारत में प्राचीन काल में महिलाओं हेतू सम्मानजनक शब्दों जैसे कि अर्धांगिनी, सहधर्मिणी आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। परन्तु बाद में फिर महिलाओं को पुरूषों के मुकाबले कम समझा जाने लगा। गांधी जी स्त्रियों में ही अहिंसा को स्पष्ट प्रतिबिम्बित मानते थे। क्योंकि उनके मतानुसार अहिंसा एक अनन्त प्रेम व कष्ट सहन करने की क्षमता का ही द्योतक है। वे स्त्री को अहिंसा का अवतार मानते थे।[12]

गांधी जी उन सभी धार्मिक व सामाजिक प्रतिबंधो के खिलाफ थे जो विधवा विवाह पर लगे हुए थे। उन्होंने विधवा विवाह की पूरजोर वकालत की और कहा कि समाज को इस प्रकार से हुऐ विवाह को हीन दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। वे पर्दा प्रथा को भी एक सामाजिक बुराई मानते थे तथा इस प्रथा को उनके नित्य प्रतिदिन के कार्यों में रूकावट भी मानते थे।

गांधी जी स्त्रियों के मंहगे कपडे, गहने व सौदर्य प्रसाधन में भी सहमति नहीं जताते थे। उन्होंनें कहा कि नारी का सौदर्य तो उसके चरित्र व शील स्वभाव में ही है। एक बार स्त्रियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि ''स्त्रियों को पुरूषों के भोग–विलास की वस्तु मानना छोड देना चाहिए। इसका उपाय पुरूषों की बजाय स्त्रियों के हाथ में ही होता है। अगर उन्होंनें पुरूषों के बराबर सांझेदारी करनी है तो उन्होंनें पुरूषों के लिए, यहां तक की अपने पति के लिए भी श्रृगांर करने से इन्कार कर देना चाहिए।'' इस प्रकार गांधी जी ने स्त्री सुधार हेतू अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किए। ताकि वे अपनी इन सामाजिक बुराईयों से बाहर आ सके तथा अपना सामाजिक तथा धार्मिक विकास कर सकें।[13]

गांधी जी के साम्प्रदायिकता पर विचार

गांधी जी के मन में साम्प्रदायिक एकता का जो विचार था वह दक्षिण अफ्रीका में ही आंदोलन के दौरान पनप चुका था। क्योकि वहां पर भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लोग रहते थो जो कि उनमें भाषाई, धार्मिक या अन्य मतभेद पाए जाते थे। परन्तु उन सब लोगों ने आपसी मतभेद को भुलाकर गांधी जी को एक समुदाय के रूप में सहयोग प्रदान किया। अतः तब से ही गांधी जी के मानस पटल पर यह धारणा बन गई थी कि भारत में भी साम्प्रदायिक एकता के बिना स्वराज्य की स्थापना करना लगभग असंभव ही है। भारत में आकर उन्होंनें हिन्दू–मुस्लिम एकता को ही साम्प्रदाायिक सद्भावना की दिशा में एक महत्वपूर्ण बिन्दू माना है। उनके मन में जितना प्रेम हिन्दुओं के प्रति था उतना ही प्रेम मुस्लिम समुदाय के प्रति भी था। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे धर्म का भी उतना ही आदर करना चाहिए जितना की वह अपने धर्म का करता है।

गांधी जी की मान्यता था कि साम्प्रदायिक एकता के लिए सहिष्णुता की भावना बहुत जरूरी है और इस भावना को मजबूत करने के लिए व्यक्ति को दूसरे धर्मों का भी अध्ययन करना चाहिए। वे अज्ञानता व रूढिवादिता को इसके लिए कारण ठहराते है तथा कहते है कि इससे फिर कट्टरता जन्म लेती है और कट्टरता धर्म से नहीं निकलती बल्कि धर्म का विनाश करती है। जिस समय 15 अगस्त 1947 को समस्त भारत आजादी के जश्न में डूबा हुआ था तब गांधी जी कोलकत्ता के ही किसी गांव में पदयात्रा कर रहे थे क्योंकि उनका उद्देश्य साम्प्रदायिक एकता कायम करना था और इसके लिए उन्होंने कई बार उपवास भी रखे।

---

[12] डॉ० मधु मुकुल चतुर्वेदी 'प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक' राज पब्लिकेशन हाऊस, जयपुर–2004, पृ0 सं0 227.

[13] महेश प्रसाद सिंह 'गांधी के सपनों का भारत' ज्ञान गंगा प्रकाशन नई दिल्ली–2010, पृ0 सं0 108.

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

इस प्रकार गांधी जी की ये सबसे बडी महत्त्वाकांक्षा थी कि भारत में हिन्दू–मुस्लिम एकता बनी रहे और इसके लिए वे समय–समय पर प्रभावी नेतृत्व भी प्रदान करते रहे। लेकिन माना जाता है कि उन्हें सबसे बडी असफलता इसी क्षेत्र में मिली क्योंकि उनके न चाहते हुए भी भारत देश का बटवारा हुआ तथा भंयकर खून–खराबा भी हुआ।[14]

[14] मनोज सिन्हा 'गांधी अध्ययन' ओरियन्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली–2010, पृ0 सं0 115, 118